सामाजिक समरसता के संवाहक संत रविदास

– डॉ. नरेन्द्र मिश्र

संत रविदास उत्तर भारत के 15वीं से 16वीं शताब्दी के बीच भक्ति आंदोलन के एक कवि, विचारक, दार्शनिक, समाज सुधारक एवं संत शिरोमणि थे। गुरु रविदास कबीर के समसामयिक थे। भक्त रविदास जी के समय में जातिगत भेदभाव चरम सीमा पर था। समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं भेदभाव के खिलाफ रविदास जी जन जागरण का अभियान चलाया। धार्मिक कट्टरता का जबर्दस्त विरोध किया तथा भक्ति एवं सेवा के सहज एवं सरल स्वरूप को अपनाने का संदेश दिया। धार्मिक भावनाओं के आधार पर प्रचलित रूढ़ियों को दूर करने के लिए उन्होंने ''मन चंगा तो कठौती में गंगा'' जैसी सूक्तियों के आधार पर क्रांति का बिगुल फूँका। समाज व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए वे निरंतर प्रयासरत रहे। उन्हें सामाजिक समरसता का अग्रदूत कहा जाता है। आज राष्ट्र के सम्मुख व्याप्त समस्याओं के समाधान में संत रविदास के बताए हुए मार्ग अत्यन्त कारगर साबित होंगे।

मेरी जाति कमीनी, पांति कमीनी,
ओछा जनम हमारा।
हम शरणागत राजा रामचन्द्र के,
कहि रविदास चमारा।।

रविदास जी का जन्म सन् 1388 के आसपास बनारस में चर्मकार जाति में हुआ था। जाति–पांति के भेदभाव को दूर करने के लिए महान संत रविदास जी ने जिनको गुरु रैदास के नाम से भी जाना जाता है, अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया । वे स्वयं कहते हैं'–

''जाति–जाति में जाति है,
जो केतन के पात।
रैदास मनुष ना जुड़ सके
जब तक जाति न जात।।''

अर्थात् जब तक मनुष्य जाति के बंधन में बँधा रहेगा, मनुष्य तब तक आपस में लड़ता रहेगा। ये जाति पाँति, ऊँच–नीच ही मनुष्य को आपस में प्रेम और सद्भाव से नहीं रहने देते हैं । संत रविदास जी समाज में फैले छुआछूत ऊँच–नीच और रंग भेद जैसे कुरूतियों को देखकर बहुत आहत थे। इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए गुरु जी ने भक्ति आंदोलन का नेतृत्व किया और अपनी कविताओं और छंदों द्वारा समाज को जागृत करने की कोशिश की। गुरु रैदास जी का प्रभाव पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में रहा। वे कहते थे–''भगवान तो निर्गुण, निराकार है, ईश्वर सर्वव्यापी है, तुझमें भी है मुझमें भी है, हब सब ईश्वर का अंश हैं। जब हम सब एक ईश्वर की संतान हैं, हम सब एक ही ईश्वर का अंश हैं । तो जाति पाँति के आधार पर एक इंसान दूसरे इंसान से तुच्छ, छोटा कैसे हो सकता है। गुरु रैदास जी ने मूर्ति पूजा का विरोध किया और कहा जब सब जगह ईश्वर व्याप्त है तो आप जहाँ हो वहीं से ईश्वर की पूजा कर सकते हैं। ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार, परहित भावना एवं सदव्यवहार का पालन करना आवश्यक है। आपने अभिमान त्यागकर दूसरों के साथ व्यवहार करने और विनम्रता एवं शिष्टता के गुणों के विकास पर बल दिया है।

कह रैदास तेरी भगति दूरि है,
भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा
पर पिपिलक ह्वै चुनि खावै।।

अर्थात् विशालकाय हाथी शक्कर के कणों को चुनने में असमर्थ किंतु लघु शरीर की पिपीलिका (चींटी) इन कणों को सरलतापूर्वक चुन लेती है। भक्ति की महिमा अपरंपार है।

संत रविदास ने संदेश दिया कि ''ईश्वर ने इंसान बनाया है न कि इंसान ने ईश्वर बनाया है'' अर्थात् इस धरती पर सभी को भगवान ने बनाया है और सभी के अधिकार समान हैं । इस सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में संत गुरु रविदास जी ने लोगों को वैश्विक भाईचारा और सहिष्णुता का ज्ञान दिया । वे अपने समय के महान संत थे और एक आम व्यक्ति की तरह जीवन को जीने की वरीयता देते हैं । संत रविदास की मान्यता थी कि सभी लोग खुशहाल रहें इसके लिए वे कहते हैं–

ऐसा चाहूँ राज में जहाँ मिलै सबन को

अन्न।

छोटे बड़ों सब सम बसै, रैदास रहै प्रसन्न।

कई बड़े राजा–रानियों और दूसरे समृद्ध लोग उनके बड़े अनुयायी थे लेकिन वे किसी से भी किसी प्रकार का धन या उपहार नहीं स्वीकारते थे । एक दिन भगवान के द्वारा उनके अंदर एक आम इंसान के लालच को परखा गया, एक दर्शनशास्त्री गुरु रविदास जी के पास एक पत्थर लेकर आये और उसके बारे में आश्चर्यजनक बात बतायी कि ये किसी भी लोहे को सोने में बदल सकता है। उस दर्शनशास्त्री ने गुरु रविदास को उस पत्थर को लेने के लिए दबाव दिया और साधारण झोपड़े की जगह बड़ी–बड़ी इमारतें बनाने को कहा, लेकिन उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया। गुरुजी के इस अटलता और धन के प्रति इस विकर्षणता से वे बहुत खुश हुए। रविदास जी ने हमेशा अपने अनुयायियों को सिखाया है कि कभी धन के लिए लालची मत बनो, धन कभी स्थायी नहीं होता इसके बजाय आजीविका के लिए कड़ी मेहनत करो।

गुरु रविदास जी हमेशा अपने शिष्यों को कहते थे कि कभी भी धन के लिए लालची न बनें। धन स्थायी नहीं है, इससे अच्छा है कड़ी मेहनत करिए और जीने के लिए कमाएँ। एक बार की बात है गुरु रविदास को काशी नरेश के दरबार में बुलाया गया। कुछ धर्मावलंबियों ने उनपर यह शिकायत किया था कि गुरु जी एक पाखंडी हैं और उन्हें भगवान की पूजा तो दूर भगवान को छूना भी नहीं चाहिए। उसके बाद राजा ने गुरु रविदास जी और कुलीन धर्मावलंबियों से कहा कि आप दोनों अपने ठाकुर जी की मूर्ति लेकर गंगा नदी के किनारे आएँ। जिसके भगवान् की मूर्ति पानी में तैरेगी और नहीं डूबेगी वही सच्चा भक्त है। कुलीन लोग एक छोटी मूर्ति लाए जिसे उन्होंने रूई से ढँक रखा था। गुरु रविदास जी 40 किलो की मूर्ति लेकर आए थे चौकोर बना हुआ था । सबसे पहले कुलीनों ने अपनी मूर्ति पानी में छोड़ा, पर मूर्ति झट से पानी में डूब गयी। उसके बाद गुरु रविदास जी ने ठाकुर जी के मूर्ति को धीरे से पानी में छोड़ा और वह तैरने लगी। यह देखकर लोग गुरु रविदास जी के पैर छूने लगे और उस दिन से काशी नरेश के साथ–साथ बाकी लोग भी गुरु जी का सम्मान करने लगे। संत के मन में समभाव रहता है वह विभेद करना नहीं जानता बल्कि सभी को ईश्वर का संतान मानता है और उसके प्रति उसी तरह समदृष्टि रखने का भाव रखता है–

संतन के मन होत है, सब कै हित की बात।

घट घट देखें अलख को, पूछे जाति न पाँति।

रविदास जन्म के करनै, होत न कोऊ नीच।

नर को नीच कर डाटि है, ओछे करम की कीच।।

कहते हैं गुरु जी अपने पास रखे मटके का पवित्र पानी लोगों को पीने के लिए देते थे। एक बार एक धनी सेठ ने उस पानी को पीने का नाटक करते हुए पीछे फेंक दिया जो उसके कपड़े में गिर गया। जबवह सेठ अपने घर गया उसने उन कपड़ों को एक कुष्ठ रोगी को दान दे दिया। जब उस कुष्ठ रोगी ने उस कपड़े को पहना तो वह बहुत जल्द रोग मुक्त हो गया। पर वह सेठ कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया और बहुत चिकित्सा करवाने पर भी वह ठीक न हो पाया। अंत में वह भी गुरु रविदास जी के पास गया और गुरु से उसने क्षमा माँगी। गुरु जी ने उस सेठ को क्षमा कर दिया और अपने आशीर्वाद से उस सेठ को जल्दी ही ठीक कर दिया। जाति की अपेक्षा कर्म पर रविदास जी विश्वास करते हैं। इसलिए वे कभी भी जाति–पाँति पर विश्वास नहीं करते। तभी तो वे कहते हैं–

ब्राह्मण छतरी बैस सूद्र, रविदास जनम है नाहिं।

जो चाहई सुबरन कऊ, पावह करमन नाहिं।।

संत रविदास का जन्म उत्तर प्रदेश के वाराणसी शहर में माता कालसा देवी और बाबा संतोख दास जी के घर पर 15वीं शताब्दी में हुआ था। हालाँकि उनके जन्म की तारीख को लेकर विवाद भी है क्योंकि कुछ का मानना है कि ये 1376, 1377 और कुछ का कहना है ये 1399 ईसवी में हुआ था। कुछ अध्येताओं के अनुसार ऐसा अनुमान लगाया गया था कि रविदास का पूरा जीवनकाल 15 वीं से 16 वीं शताब्दी ईसवी में 1450 से 1520 के बीच तक रहा है। रविदास के पितामल साम्राज्य के राजा नगर के सरपंच थे और खुद जूतों का व्यापार और

उसकी मरम्मत का कार्य करते थे । अपने बचपन से ही रविदास बेहद बहादुर और ईश्वर के बहुत बड़े भक्त थे लेकिन बाद में उन्हें उच्च जाति के द्वारा उत्पन्न भेदभाव की वजह से बहुत संघर्ष करना पड़ा जिसका उन्होंने सामना किया और अपने लेखन के द्वारा रविदास ने लोगों को जीवन के इस तथ्य से अवगत कराया। उन्होंने हमेशा लोगों को सिखाया कि अपने पड़ोसियों को बिना भेद–भाव के प्यार करो। उनकी प्रतिष्ठा को देखकर मुगल शासक उनका धर्म परिवर्तन कराने को आमादा था लेकिन संत रविदास तिल भर भी नहीं हिले। वे स्पष्ट रूप से कुरान पढ़ने से इंकार कर देते हैं और अपने धर्म एवं वेद–पुराण के ज्ञान को श्रेष्ठ निरूपित करते हैं।

वेद वाक्य उत्तम धरम, निर्मल वाका ज्ञान।
यह सच्चा मत छोड़कर, मैं क्यों पढ़ूँ कुरान

पूरी दुनिया में भाईचारा और शांति की स्थापना के साथ ही उनके अनुयायियों को दी गई महान शिक्षा को याद करने के लिए भी संत रविदास के जन्म दिवस को मनाया जाता है। अपने अध्यापन के आरंभिक दिनों में काशी में रहने वाले रूढ़िवादी धर्मावलंबियों के द्वारा उनकी प्रसिद्धि को हमेशा रोका जाता था क्योंकि संत रविदास अस्पृश्यता के भी गुरु थे। सामाजिक व्यवस्था को खराब करने के लिए राजा के सामने लोगों द्वारा उनकी शिकायत की गयी थी। रविदास को भगवान के बारे में बात करने से, साथ ही उनका अनुसरण करने वाले लोगों को अध्यापन और सलाह देने के लिए भी प्रतिबंधित किया गया था ।उनका मानना था कि जो अल्पज्ञानी होता है वही वेद का सम्मान नहीं करता । वे वेद को सत्य और सनातन मानते हैं तथा ज्ञान, धर्म एवं मर्यादा को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।

सत्य सनातन वेद है, ज्ञान धर्म मर्याद।
जो न जाने वेद को, वृथा करे बकवाद।।

बचपन में संत रविदास अपने गुरु पंडित शारदानंद के पाठशाला गए जिनको बाद में कुछ उच्च जाति के लोगों द्वारा दाखिला लेने से से रोका गया। हालाँकि पंडित शारदा ने यह महसूस किया कि रविदास कोई सामान्य बालक न होकर एक ईश्वर के द्वारा भेजी गयी संतान है। अतः पंडित शारदानंद ने रविदास को अपनी पाठशाला में दाखिला दिया और उनकी शिक्षा की शुरुआत हुई। वे बहुत ही तेज और होनहार थे और अपने गुरु के सिखाने से ज्यादा प्राप्त करते थे। पंडित शारदानंद ने उनसे और उनके व्यवहार से बहुत प्रभावित रहते थे उनका विचार था कि एक दिन रविदास आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध और महाने समाज सुधारक के रूप में जाने जाएँगे। पाठशाला में पढ़ने के दौरान रविदास पंडित शारदानंद के पुत्र के मित्र बन गए । एक दिन दोनों लोग एक साथ लुका–छिपी ,खेल रहे थे, पहली बार रविदास जी जीते और दूसरी बार उनके मित्र की जीत हुई। अगली बार, रविदास की बारी थी लेकिन अँधेरा लोने की वजह से वे लोग खेल को पूरा नहीं कर सके उसके बाद दोनों ने खेल को अगले दिन सुबह जारी रखने का फैसला किया। अगली सुबह रविदास जी तो आये लेकिन उनके मित्र नहीं आये। वे लंबे समय तक इंतजार करने के बाद अपने उसी मित्र के घर गए और देखा कि उनके मित्र के माता–पिता और पड़ोसी रो रहे थे।

उन्होंने उनहीं में से एक से इसका कारण पूछा और अपने मित्र की मौत की खबर सुनकर हक्का–बक्का रह गए । उसके बाद उनके गुरु ने संत रविदास को अपने बेटे के लाश के स्थान पर पहुँचाया, वहाँ पहुँचने पर रविदास ने अपने मित्र से कहा कि उठो ये सोने का समय नहीं है दोस्त, ये तो लुका–छिपी खेलने का समय है। जन्म से ही गुरु रविदास दैवीय शक्तियों से समृद्ध थे, रविदास के ये शब्द सुनते ही उनके मित्र फिर से जी उठे। इस आश्चर्यजनक पल को देखने के बाद उनके माता–पिता और पड़ोसी चकित रह गए। रविदास जी अपने वचन के पक्के थे। वे निर्भीक और साहसी थे। मुगलों को लगता था कि रविदास के धर्म परिवर्तन करने से उनके हजारों अनुयायी भी मुस्लिम धर्म को अपना लेंगे लेकिन वे इससे स्पष्ट मना कर देते हैं। कुंभनदास की तरह वे भी मुगल सम्राट को ठेगा दिखा देते हैं। प्राण देने को तत्पर हो जाते हैं लेकिन हिंदू धर्म का वे जीवनपर्यन्त परित्याग नहीं करते हैं। यह उनकी धर्म के प्रति निष्ठा है।

मैं नहीं दब्बू बाल गँवारा, गंग त्याग गहें लाल किनारा ।

प्राण तजू पर धरम न देऊ, तुमसे शाह सत्य कह देऊँ ।

चोटी–शिखा कवहूँ नहिं त्यागूं, वस्त्र समेत देह भल त्यागूं । कंठ कृपाण का करौं प्रहारा, चाहें डुबाओ सिंधु मंझारा ।।

भगवान के प्रति उनके प्यार और भक्ति की वजह से वे अपने पेशेवर पारिवारिक व्यवसाय से नहीं जुड़ पा रहे थे और ये उनके माता–पिता की चिंता का बड़ा कारण था। अपने पारिवारिक व्यवसाय से जुड़ने के लिए उनके माता–पिता ने इनका विवाह काफी कम उम्र में ही श्रीमती लोना देवी से कर दिया जिसके बाद रविदास को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम विजयदास पड़ा। शादी के बाद भी संत रविदास सांसारिक मोह की वजह से पूरी तरह से अपने पारिवारिक व्यवसाय के ऊपर ध्यान नहीं दे पा रहे थे। उनके इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर उनके पिता ने सांसारिक जीवन को निभाने के लिए बिना किसी मदद के उनको खुद से पारिवारिक संपत्ति से अलग कर दिया । इस घटना के बाद रविदास अपने ही घर के पीछे रहने लगे और पूरी तरह से अपनी सामाजिक मामलों से जुड़ गए। बाद में रविदास जी भगवान राम के विभिन्न स्वरूप राम, रघुनाथ, राजा रामचन्द्र, कृष्णा, गोविन्द आदि के नामों का इस्तेमाल अपनी भावनाओं को उजागर करने के लिए करने लगे और उनके महान अनुयायी बन गए। वे राम का नित्य प्रति स्मरण करते हैं। प्रभु की वंदना के समक्ष सभी को वे तुच्छ समझते हैं। वे प्रभु को चंदन, घनवन, चंद्र, दीपक, मोती, स्वर्ण एवं स्वामी की उपमा देते हैं और स्वयं को पानी, मोर, चकोर, बाती, धागा एवं दास से अभिहित करते हैं। यानी परमात्मा सर्वस्व है और आत्मा उसकी अनुगामिनी। यह एकनिष्ठा भाव ही उन्हें ईश्वर का अनन्य सेवक बनाती है।

अब कैसे छूटे राम रट लागी।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी।
जाकी अंग–अंग बास समानी।।
प्रभु जी तुम धन वन हम मोरा।
जैसे चितवन चंद चकोरा ।।
प्रभु जी तुम दिया हम बाती ।
जाकि जोति बरै दिन राति ।।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा ।
जैसे सोनहिं लिलत सुहागा ।।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा ।
ऐसी भक्ति करै रैदासा ।।

बिना किसी दुख के शांति और इंसानियत के साथ एक शहर के रूप में गुरु रविदास जी द्वारा बैगमपुरा शहर को बसाया गया। अपनी कविताओं को लिखने के दौरान रविदास जी द्वारा बेगमपुरा शहर को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया था जहाँ पर उन्होंने बताया कि एक ऐसा शहर जो बिना किसी दुख–दर्द या डर के और एक जमीन है जहाँ सभी लोग बिना किसी भेदभाव, गरीबी और जाति अपमान के रहते हैं। एक ऐसी जगह जहाँ कोई शुल्क नहीं देता, कोई भय, चिंता या प्रताड़ना नहीं हो।

संत रविदास जी को मीराबाई के आध्यात्मिक गुरु के रूप में माना जाता है जो कि राजस्थान के राजा की पुत्री और चित्तौड़ की रानी थी। वे संत रविदास के अध्यापन से बेहद प्रभावित थीं और उनकी बहुत बड़ी अनुयायी बनीं। अपने गुरु के सम्मान में मीराबाई ने कुछ पंक्तियाँ लिखीं हैं– "**गुरु मिलीया रविदास जी।**" वे अपने माता–पिता की एक मात्र संतान थीं जो बाद में चित्तौड़ की रानी बनीं। मीरा बाई ने बचपन से ही अपनी माँ को खो दिया जिसके बाद वे अपने दादा जी के संरक्षण में आ गयी जो कि रविदास जी के अनुयायी थे। वह अपने दादा जी साथ कई बार गुरु रविदास से मिली और उनसे काफी प्रभावित हुईं। अपने विवाह के बाद उन्हें और उनके पति को गुरु जी से आशीर्वाद प्राप्त हुआ। बाद में मीराबाई ने अपने पति और ससुराल पक्ष के लोगों की सहमति से गुरु जी को अपने वास्तविक गुरु के रूप में स्वीकार किया। इसके बाद उन्होंने गुरु जी के सभी धर्मों के उपदेशों को सुनना शुरु कर दिया जिसने उनके ऊपर गहरा प्रभाव छोड़ा और वे प्रभु भक्ति की ओर आकर्षित हो गयीं। कृष्ण प्रेम में डूबी मीराबाई भक्ति गीत गाने लगीं और दैवीय शक्ति का गुणगान करने लगीं। "**गुरु मिलीया रविदास जी दीनी ज्ञान की गुटकी। चोट लगी निजनाम हरी की महारे हियरे खटकी।।**"

संत रविदास अब ईश्वर से बिछुड़कर पश्चाताप नहीं करना चाहते। वे हीरा के समान कीमती शरीर को तुच्छ नहीं बनाना चाहते। अभी तक का जीवन सोने–खाने और बुराइयों में ही बीता था उसे वे अब बर्बाद नहीं करना चाहते। उनका स्पष्ट मत था कि वाह्य आडंबर को त्यागकर अपने अंतर्मन को बदलने से ही ईश्वर की प्राप्ति होगी अन्यथा नर्क का भागीदार बनने के लिए मनुष्य को तैयार रहना चाहिए।

रैन गंवाई सोय करि, दिवस गवायो खाय।

हीरा जनम अमोल है, कौड़ी बदले जाय।
अंतर गति राचै नहिं, बाहर करै उजास ।
ते नर जमपुर जायेंगे, सत भाषै रैदास ।।

दिनों–दिन वह ध्यान की ओर आकर्षित हो रही थीं और वे अब संतो के साथ रहने लगी थीं। उनके पति की मृत्यु के बाद उनके देवर और ससुराल के लोग उन्हें देखने आये लेकिन वे उन लोगों के सामने बिल्कुल व्यग्र और नरम नहीं पड़ीं। बल्कि उन्हें तो आधी रात को उन लोगों के द्वारा गंभीरी नदी में फेंक दिया गया था लेकिन गुरु रविदास जी के आशीर्वाद से वे बच गयीं। एक बार अपने देवर के द्वारा दिए गए जहरीले दूध को गुरु जी द्वारा अमृत मान कर पी गयीं और खुद को धन्य समझा। उन्होंने कहा : **''विष को प्याला राना जी मिला द्यो / मेरथानी ने पाये / का चरणामित् पी गयी रे / गुण गोविन्द गाये।''**

संत रविदास के समय में शूद्रों अछूतों को ब्राह्मणों की तरह जनेऊ, माथे पर तिलक और दूसरे धार्मिक संस्कारों की आजादी नहीं थी। संत रविदास एक महान व्यक्ति थे जो समाज में अस्पृश्यों के बराबरी के अधिकार के लिए उन सभी निषेधों के खिलाफ थे जो उन पर रोक लगाती थी। उन्होंने वे सभी क्रियाएँ जैसे जनेऊ धारण करना, धोती पहनना, तिलक लगाना आदि निम्न जाति के लोगों के साथ शुरू किया जो उन पर प्रतिबंधित था। कुछ धर्मावलंबी लोग उनकी इस बात से नाराज थे और समाज में अस्पृश्यों के लिए ऐसे कार्यों को जाँचने का प्रयास किया। हालाँकि संत रविदास जी ने हर बुरी परिस्थिति का बहादुरी के साथ सामना किया और बेहद विनम्रता से लोगों का जवाब दिया। अस्पृश्य होने के बावजूद भी जनेऊ पहनने के कारण कुछ धर्मावलंबियों की शिकायत पर उन्हें राजा के दरबार में बुलाया गया। वहाँ उपस्थित होकर उन्होंने कहा कि अस्पृश्यों को भी समाज में बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए क्योंकि उनके शरीर में भी दूसरों की तरह खून का रंग लाल और पवित्र आत्मा होती है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए संत रविदास ने तुरंत अपनी छाती पर एक गहरी चोट की और उस पर चार युग जैसे सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलयुग की तरह सोना, चाँदी, ताँबा और सूती के चार जनेऊ खींच दिया। राजा समेत सभी लोग अचंभित रह गये और गुरु जी के सम्मान में सभी उनके चरणों को छूने लगे। राजा को अपने बचपने जैसे व्यवहार पर बहुत शर्मिंदगी महसूस हुई और उन्होंने इसके लिए माफी माँगी। गुरु जी ने सभी को माफ करते हुए कहा कि जनेऊ धारण करने का ये मतलब नहीं कि कोई भगवान को प्राप्त कर लेता है । इस कार्य में वे केवल इसलिए शामिल हुए ताकि वे लोगों को वास्तविकता और सच्चाई बता सके। गुरु जी ने जनेऊ निकाला और राजा को दे दिया इसके बाद उन्होंने कभी जनेऊ और तिलक का इस्तेमाल नहीं किया।

एक बार पंडित गंगाराम गुरु जी से मिले और उनका सम्मान किया। वे हरिद्वार में कुंभ उत्सव में जा रहे थे गुरु जी ने उनसे कहा कि ये सिक्का आप गंगा माता को दे दीजिएगा अगर वे इसे आपके हाथों से स्वीकार करें। पंडित जी ने बड़ी सहजता से इसे ले लिया और वहाँ से हरिद्वार चले गये। वे वहाँ पर नहाये और वापस अपने घर लौटने लगे बिना गुरु जी का का सिक्का गंगा माता को दिये। वे अपने रास्तें में थोड़ा कमजोर होकर बैठ गए और महसूस किया कि वे कुछ भूल रहे हैं, वे दुबारा से नदी के किनारे वापस गये और जोर से चिल्लाए माता, गंगा माँ पानी से बाहर निकली और उनके अपने हाथ से सिक्के को स्वीकार किया। माँ गंगा ने संत रविदास के लिए सोने के कंगन भेजे। पंडित गंगा राम घर वापस आये वे कंगन गुरु जी के बजाय अपनी पत्नी को दे दिया।

एक दिन पंडित जी की पत्नी उस कंगन को बाजार में बेचने के लिए गयी। सोनार चालाक था, सो उसने कंगन को राजा और राजा ने रानी को दिखाने का फैसला किया। रानी ने उस कंगन को बहुत पसंद किया और एक और लाने को कहा। राजा ने घोषणा की कि कोई इस तरह के कंगन नहीं लेगा, पंडित अपने किये पर बहुत शर्मिंदा था क्योंकि उसने गुरुजी को धोखा दिया था। वह रविदास जी से मिला और माफी के लिए निवेदन किया। गुरु जी ने उससे कहा कि ''मन चंगा तो कठौती में गंगा'' ये लो दूसरे कंगन जो पानी से भरे जल में मिट्टी के बर्तन में गंगा के रूप में यहाँ बह रही है। गुरु जी इस दैवीय शक्ति को देखकर वी गुरु जी का भक्त बन गया।

रविदास की पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने पड़ोसियों से विनती की कि वो गंगा नदी के किनारे अंतिम संस्कार में मदद करें। हालाँकि इस

रिवाज के संदर्भ में कुछ लोग खिलाफ थे कि वे गंगा के जल से स्नान करेंगे जो रस्म की जगह से मुख्य शहर की ओर जाता है और वो प्रदूषित हो जाएगा। गुरु जी बहुत दुखी और मजबूर हो गए हालाँकि उन्होंने कभी भी अपना धैर्य नहीं खोया और अपने पिता की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करने लगे। अचानक से वातावरण में एक भयानक तूफान आया और नदी का पानी उल्टी दिशा में बहना प्रारंभ हो गया और जल की एक गहरी तरंग आयी और लाश को अपने साथ ले गयी। इस भवंडर ने आसपास की सभी चीजों को सोख लिया। तब से गंगा का पानी उल्टी दिशा में बह रहा है।

इतिहास के अनुसार बाबर मुगल साम्राज्य का पहला राजा था जो 1526 में पानीपत का युद्ध जीतने के बाद दिल्ली के सिंहासन पर बैठा जहाँ उसने भगवान के भरोसे के लिए लाखों लोगों को कुर्बान कर दिया। वह पहले से ही संत रविदास की दैवीय शक्तियों से परिचित था और फैसला किया कि एक दिन वे हुमायूँ के साथ गुरु जी से मिलेगा। वह वहाँ गया और गुरु जी को सम्मान देने के लिए उनके पैर छुए हालाँकि, आशीर्वाद के बजाय उसे गुरु जी से सजा मिली क्यांकि उसने लाखों निर्दोष लोगों की हत्याएँ की थी। गुरु जी ने उसे गहराई से समझाया जिसने बाबर को बहुत प्रभावित किया और इसके बाद वह भी संत रविदास का अनुयायी बन गया और दिल्ली तथा आगरा के गरीबों की सेवा के द्वारा समाज सेवा करने लगा। संत रविदास जी का व्यक्तित्व विराट था जिसके छाँव तले आमजन को शांति मिलती है।

''मैं उसे खोजता हूँ जो आदमी है, चरित्र पर अड़ा, देवदार की तरह खड़ा।।'

—केदारनाथ अग्रवाल

समाज में बराबरी, सभी भगवान एक हैं, इंसानियत, उनकी अच्छाई और बहुत से कारणों की वजह से बदलते समय के साथ संत रविदास के अनुयायियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। दूसरी तरफ, कुछ धर्मावलंबी और पीरन दित्ता मिरासी गुरु जी को मारने की योजना बना रहे थे इस वजह से उन लोगों ने गाँव से दूर एक एकांत जगह पर मिलने समय तय किया। किसी विषय पर चर्चा के लिए उन लोगों ने गुरु जी को वहाँ पर बुलाया जहाँ गुरु जी की हत्या की साजिश रची थी हालाँकि गुरु जी को अपनी दैवीय शक्ति की वजह से पहले से ही सब कुछ पता चल गया था। जैसे ही चर्चा शुरु हुई, गुरु जी उन्हीं के एक साथी भल्लानाथ के रूप में दिखायी दिये जो कि गलती से तब मारा गया था। बाद में जब गुरु जी ने अपने झोपड़े में शंखनाद किया तो सभी हत्यारे गुरु जी को जिंदा देख भौचक्के रह गये तब वे हत्या की जगह पर गये जहाँ पर उन्होंने संत रविदास की जगह अपने ही साथी भल्लानाथ की लाश पायी। उन सभी को अपने कृत्य पर पश्चाताप् हुआ और वे लोग गुरु जी से माफी माँगने उनके झोपड़े में गए। परशुराम की प्रतीक्षा में रामधारी सिंह दिनकर ने अहिंसा का प्रतिकार किया है। परिस्थिति के अनुसार दोषियों और दुष्टों के लिए दण्ड को आवश्यक बताया है। यह बुद्ध और गांधी के सिद्धांतों का पुनर्पाठ कहा जा सकता है।

युद्ध निंद है तो अनीति से प्राप्त शांति और भी घृणास्पद है—पापी कौन?

मनुज से उसका न्याय चुराने वाला, या कि न्याय खोजते विघ्न का शीश उड़ाने वाला।

प्रत्युत्तर में 'दिनकर' स्वयं लिखते हैं—

''न्यायोचित अधिकार माँगने से न मिले तो लड़के।

तेजस्वी छीनते समर को जीत या खुद मर के।।''

यही प्रसंग दिनकर की कृति रश्मिरथी में भी आता है जहाँ धर्म को नये ढंग से व्याख्यायित किया गया है। यह व्याख्या भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता में दिए गए उपदेश एवं संत रविदास के निष्काम कर्म को प्रासंगिक बनाती है।

''असि छोड़ भीरु बन जहाँ धर्म सोता है। पातक प्रचंडतम वहीं प्रकट होता है।।''

संत रविदास सच्चे संत थे। वे सहज, सरल एवं परोपकारी थे। उनका मन निर्मल तथा पवित्र था। रविदास जी संपूर्ण राष्ट्र की चिंता करते थे और उसी के अनुरूप कार्य करते थे। वे समरसता के जीवंत प्रतीक थे। समाज में एकता और भाई चारा बना रहे इसके लिए वे सदा कटिबद्ध रहते थे। ईश्वर की सत्ता के अलावा वे किसी की सत्ता को नहीं मानते थे। वे कुंदन की तरह निर्मल थे। संत परंपरा में उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त था इसीलिए उन्हें कबीर का गुरुभाई कहा जाता है। मीरा उन्हें अपना गुरु मानती थीं। कर्म पर आपकी अटूट निष्ठा थी। वे सदा

अप्प देवो भव के सिद्धान्त की हिमायती थीं। समाज में आत्मबल, आत्मनिर्भरता तथा स्वावलंबन की भावना उत्पन्न हो इसके लिए वे पूर्णतया प्रतिबद्ध थे। संत रविदास महान कर्मयोगी थे। कर्म ही पूजा है, इस विश्वास के वे जनक हैं। कर्म के समक्ष वे भक्ति को भी नगण्य स्थान देते थे। अपने कर्म के प्रति पूर्ण ईमानदारी से भक्तिभाव से कार्य करना उनका मिशन था। वे सही अर्थों में सामाजिक समरसता एवं निष्काम कर्मयोग के अग्रदूत हैं। कामायनीकार की यह पंक्ति संत रविदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को चरितार्थ करती है।

''औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ।

टपने सुख को विस्तृत कर लो, जग को सुखी बनाओ।।''

: संदर्भ :

1. रैदास बानी : डॉ. शुकदेव सिंह, राधाकृष्णन प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 2. भारत **कोश डॉट को डॉट** एनजी

3. बेवदुनिया डॉट कॉम
कवि

4. गूगल : हिंदी की दुनिया डॉट काम

5. विकिपीडिया डॉट ओआरजी

https://en.wikipedia.org/wiki/Ravidas6. भारतीय संतो में सामाजिक समरसता : कृष्णगोपाल जी, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल?

7. काव्य आलोचना का स्पंदन, डॉ. नरेंद्र मिश्र, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर

8. हिंदी अनुशीलन, भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयागराज

9. गवेषणा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगर, उत्तर प्रदेश

10. साहित्य परिक्रमा, अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, नई दिल्ली

–प्रोफेसर–जय नारायण व्यास वि. वि.
5 सी सेक्टर–2, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय स्टॉफ कॉलोनी, रेसीडेंसी रोड, जोधपुर–342011